बदलते समय में युवा जीवन की चुनौतियाँ : काशीनाथ सिंह के 'रेहन पर रग्घू' के विशेष संदर्भ में

लेखक
अपर्णा भारती
पीएचडी शोधर्थी
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास
Email- arpana 0811@gmail. Com

शोध निदेशक :-
Dr manjunath N ambig
Professor &head,
Pg& research institute
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास
ambigdrmanjunath@gmail.com

सारांश

21वीं सदी का हिंदी उपन्यास युवा जीवन को केवल आयु की एक अवस्था के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संक्रमण के एक जटिल बिंदु के रूप में चित्रित करता है। भूमंडलीकरण, बाजारवाद, बेहतर जीवन और करियर की आकांक्षा, विदेश-गमन की चाह और परिवार के भीतर बदलते अधिकार-संबंधों ने युवा पीढ़ी के सामने नई तरह के द्वंद्व खड़े किए हैं। काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' इस बदलाव को बनारस जैसे पारंपरिक शहर की पृष्ठभूमि पर एक पिता और उसकी संतानों के संबंधों के माध्यम से सामने लाता है। संतान की उन्नति के लिए पिता के आत्म-त्याग और संतान की अपनी महत्वाकांक्षाओं के बीच का तनाव उपन्यास की केंद्रीय संवेदना बनकर उभरता है। यह आलेख इसी उपन्यास के विशेष संदर्भ में युवा जीवन की चुनौतियों- आर्थिक आकांक्षा, पीढ़ीगत द्वंद्व, व्यक्तिवाद, उपभोक्तावाद, सांस्कृतिक जड़ों से दूरी, प्रेम-विवाह संबंधी बदलते मूल्य और मूल्य-संकट - का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द: युवा जीवन, भूमंडलीकरण, पीढ़ीगत द्वंद्व, युवा आकांक्षा, उपभोक्तावाद, पारिवारिक संबंध, अस्मिता, व्यक्तिवाद, आर्थिक महत्वाकांक्षा, मूल्य-संकट

प्रस्तावना

युवा होना क्या केवल उम्र की एक अवस्था से गुजरना भर है, या यह अपने आप में एक संघर्ष है - अपनी पहचान गढ़ने का, अपने परिवार से बातचीत करने का और उस दुनिया से तालमेल बिठाने का जो लगातार बदल रही है? 21वीं सदी के आरंभ के साथ भारतीय समाज में बाजार का विस्तार, रोजगार की नई संभावनाएँ, विदेश जाने के अवसर, संयुक्त परिवार का विघटन और व्यक्तिगत आकांक्षाओं की मुखरता तेज हुई। युवा जीवन इसलिए अब केवल जैविक अवस्था नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक संक्रमण की वह अवस्था बन गया है जिसमें एक ओर महत्वाकांक्षा है और दूसरी ओर परिवार, परंपरा तथा जड़ों का खिंचाव है।

इसी परिवेश में समकालीन हिंदी उपन्यास ने युवा जीवन के बदलते रूपों को अभिव्यक्ति दी है। काशीनाथ सिंह का **'रेहन पर रग्घू'** बनारस के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को आधार बनाकर पिता रघुनाथ और उनकी संतानों के माध्यम से बदलते पारिवारिक मूल्यों की कथा रचता है। शीर्षक में निहित 'रेहन' का अर्थ भी केवल आर्थिक लेन-देन तक सीमित नहीं है; यह उस पिता की स्थिति का प्रतीक बन जाता है जो संतान के भविष्य के लिए अपनी सामर्थ्य, इच्छाओं और अंततः अपने जीवन तक को दाँव पर लगा देता है। राजेश चौधरी ने भी इस उपन्यास को भूमंडलीकरण के दौर में बदलते पारिवारिक और सामाजिक ताने-बाने के एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ के रूप में पढ़ा है[1], जबकि अमोल अंबावत जीवणसिंहपुरा इसे बाजारवाद के जीवंत साक्ष्य के रूप में देखते हैं।[2] यह आलेख इन्हीं आलोचनात्मक दृष्टियों के सहारे उपन्यास के भीतर से युवा जीवन की चुनौतियों को क्रमवार सामने लाने का प्रयास करता है।

काशीनाथ सिंह बनारस के जिस सांस्कृतिक मिज़ाज के लिए जाने जाते हैं, वह 'रेहन पर रग्घू' में भी बना रहता है - बतकही की भाषा, ठेठ स्थानीय मुहावरे और पात्रों के आपसी संवाद में एक अजब आत्मीयता। किंतु इसी परिचित भाषिक बुनावट के भीतर से लेखक एक ऐसे सामाजिक यथार्थ को उभारते हैं जो अब

पारंपरिक बनारसी जीवन-शैली से लगातार दूर होता जा रहा है। रघुनाथ जैसे पात्र उस पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं जिसने अपने समय की सीमाओं में रहकर भी संतान के लिए असीम स्वप्न देखे, जबकि संजय, सोनल और धनंजय जैसे युवा पात्र उस पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं जो बाज़ार, तकनीक और भूमंडलीकरण द्वारा रचे गए नए अवसरों तथा नई अनिश्चितताओं - दोनों से एक साथ जूझ रहे हैं। उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह इस टकराव को किसी एक पक्ष के पक्ष या विपक्ष में खड़े होकर नहीं, बल्कि दोनों पीढ़ियों की विवशताओं और आकांक्षाओं को समान गंभीरता से देखते हुए प्रस्तुत करता है।

युवा आकांक्षा और विदेश-गमन

उपन्यास में संजय की महत्वाकांक्षा युवा जीवन में आए उस परिवर्तन को रेखांकित करती है जिसमें बेहतर करियर और विदेश-गमन सामाजिक उन्नति के महत्त्वपूर्ण संकेत बन जाते हैं। वह सॉफ्टवेयर इंजीनियर बनकर अमेरिका जाना चाहता है। उसके लिए 'बाहर जाना' केवल स्थान-परिवर्तन नहीं, बल्कि जीवन की नई संभावनाओं की ओर बढ़ना है। रघुनाथ और संजय के संबंधों को लेखक 'गुरुत्वाकर्षण' अथवा 'ग्रेविटेशन के नियम' के रूपक से समझाते हैं। उपन्यास में यह भाव आता है— "माता-पिता बच्चों को अपने संस्कार, प्रेम और मोह के आकर्षण से अपनी ओर खींचते हैं, जबकि युवा अपनी गति से ऊपर उठकर उस आकर्षण से मुक्त होना चाहता है । हर बेटे-बेटी के माँ-बाप पृथ्वी हैं। बेटा ऊपर जाना चाहता है..."[3]

यह कथन युवा आकांक्षा और पारिवारिक आकर्षण के बीच के मूल द्वंद्व को अत्यंत संक्षिप्त रूप में व्यक्त करता है। संजय की विदेश-आकांक्षा इसी द्वंद्व को मूर्त रूप देती है, और साथ ही यह भी स्पष्ट करती है कि भूमंडलीकरण के दौर में युवा के लिए 'उन्नति' का भूगोल अब राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं रह गया है। यह प्रवृत्ति राजेश चौधरी के इस अवलोकन से भी पुष्ट होती है कि भूमंडलीकरण ने भारतीय मध्यवर्गीय युवा के लिए सफलता की परिभाषा को ही बदल दिया है।

गौरतलब है कि यह आकांक्षा उपन्यास में कहीं भी अनुचित या निंदनीय के रूप में चित्रित नहीं की गई है। संजय का सपना अपने समय के भीतर पूर्णतः तर्कसंगत और स्वाभाविक जान पड़ता है - बेहतर शिक्षा, बेहतर वेतन, बेहतर जीवन-स्तर

की चाह किसी भी युवा के लिए स्वाभाविक महत्वाकांक्षा है। समस्या आकांक्षा में नहीं, बल्कि उस आकांक्षा और पारिवारिक अपेक्षा के बीच बनते तनाव में है। रघुनाथ के भीतर भी संजय के प्रति कोई विरोध नहीं है; उनकी पीड़ा इस बात से उपजती है कि जिस 'ऊपर उठने' की प्रक्रिया में संजय आगे बढ़ रहा है, उसमें पीछे छूटता जा रहा परिवार धीरे-धीरे स्मृति और कर्तव्य की वस्तु भर बनकर रह जाता है। यही कारण है कि उपन्यास का 'गुरुत्वाकर्षण' रूपक इतना सटीक जान पड़ता है - पृथ्वी बेटे को रोकती नहीं, केवल खींचती है, और बेटा उसी खिंचाव को अनुभव करते हुए भी आगे बढ़ जाता है।

करियर और पारिवारिक संबंधों का टकराव

संजय के संदर्भ में करियर केवल आर्थिक उन्नति का माध्यम नहीं रह जाता, बल्कि वह उसके जीवन-निर्णयों का केंद्रीय आधार बन जाता है। रघुनाथ जिस विवाह को पारिवारिक संबंध और सामाजिक प्रतिष्ठा के संदर्भ में देखते हैं, संजय उसी संबंध में अपने भविष्य की संभावनाएँ तलाशने लगता है। उपन्यासकार इस स्थिति को सीधे नैतिक उपदेश में बदलने के बजाय पिता-पुत्र के हितों के टकराव के रूप में प्रस्तुत करते हैं। संजय का प्रेम भी 'गुणा-भाग' और 'जोड़-घटाव' जैसी व्यावहारिक भाषा से जुड़ा हुआ चित्रित होता है, जिससे उसके जीवन में करियर और संबंधों के बीच बनते-बिगड़ते समीकरण उजागर होते हैं।[4] विवाह जैसा भावनात्मक और पारिवारिक निर्णय भी इस प्रकार व्यावसायिक तर्क की भाषा में तौला जाने लगता है।

इस तनाव को समझने के लिए उपन्यास में संजय के चरित्र का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। उसके जीवन में प्रेम, विवाह, करियर और विदेश-प्रवास अलग-अलग क्षेत्र नहीं रह जाते, बल्कि एक-दूसरे से गुँथे हुए निर्णय बन जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक युवा के सामने चुनौती केवल सफलता प्राप्त करने की नहीं, बल्कि सफलता और संबंधों के बीच संतुलन बनाने की भी है। पिता के लिए जो संबंध भावनात्मक और पारिवारिक दायित्व हैं, वे युवा के लिए कभी-कभी व्यक्तिगत विकास की कसौटी पर रखे जाने लगते हैं। यही स्थिति पीढ़ीगत

द्वंद्व को जन्म देती है, जिसे गावकर (हस्ताक्षर) ने भी बदलते सामाजिक परिवेश और पारिवारिक संरचना के टकराव के रूप में रेखांकित किया है।

इस टकराव का एक और पहलू यह भी है कि रघुनाथ स्वयं शिक्षक हैं - वे जीवन भर ज्ञान, संस्कार और नैतिक मूल्यों के प्रचारक रहे हैं, फिर भी अपने ही पुत्र के जीवन-निर्णयों को व्यावसायिक तर्क में ढलते देखकर वे स्वयं को असहाय अनुभव करते हैं। यह विडंबना उपन्यास को केवल पीढ़ीगत द्वंद्व की कथा नहीं, बल्कि मूल्यों के क्षरण और पुनर्परिभाषा की कथा भी बना देती है। संजय के लिए विवाह, प्रेम और करियर के बीच कोई नैतिक सोपान नहीं है- तीनों समान रूप से जीवन की उन्नति के साधन हैं, जबकि रघुनाथ के लिए ये तीनों जीवन के भिन्न-भिन्न, पवित्र और स्वतंत्र आयाम हैं। यही अंतर पीढ़ीगत द्वंद्व की जड़ में है।

सफलता, प्रतिस्पर्धा और उपभोक्तावादी मानसिकता

उदारीकरण के बाद भारतीय समाज में आर्थिक सफलता और उपभोग की संस्कृति ने युवा आकांक्षाओं को नया रूप दिया। उपन्यास में संजय का चरित्र इसी मानसिकता के एक रूप को सामने लाता है। उसके पास जो है, उससे संतुष्ट रहने के बजाय वह लगातार उससे आगे की ओर देखता है। सोनल का कथन इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है— “पापा, आपने ऐसा बेटा क्यों पैदा किया जो वह नहीं देखता जो उसके पास है... हमेशा उधर ही देखता है जो दूसरे के पास है...”[5]

यह कथन केवल संजय के व्यक्तिगत स्वभाव की ओर संकेत नहीं करता, बल्कि प्रतिस्पर्धी सामाजिक वातावरण में उपलब्धि की निरंतर बढ़ती आकांक्षा को भी रेखांकित करता है। युवा के लिए एक उपलब्धि अगली उपलब्धि की सीढ़ी बन जाती है और वर्तमान जीवन की संतुष्टि भविष्य की संभावनाओं के सामने छोटी पड़ने लगती है। सफलता इस प्रकार अपने आप में अंतिम लक्ष्य न रहकर लगातार आगे बढ़ते रहने की एक अनवरत इच्छा में बदल जाती है- एक ऐसी मनोवृत्ति जिसमें व्यक्ति वर्तमान संबंधों और उपलब्धियों की तुलना भी भविष्य की संभावनाओं से करने लगता है। अमोल अंबावत जीवणसिंहपुरा के अनुसार भी यह उपन्यास बाजारवाद द्वारा रचे गए इसी अतृप्ति-बोध का जीवंत दस्तावेज़ है।[6]

युवा जीवन का दूसरा संकट : अकर्मण्यता और आर्थिक निर्भरता

उपन्यास युवा जीवन का केवल महत्वाकांक्षी रूप ही नहीं दिखाता। धनंजय के चरित्र में इसके विपरीत रूप - आर्थिक निर्भरता और दायित्व से बचने की प्रवृत्ति - को भी देखा जा सकता है। इस प्रकार संजय और धनंजय युवा पीढ़ी की दो अलग दिशाओं को सामने लाते हैं : एक ओर अत्यधिक उपलब्धि-केंद्रित जीवन, और दूसरी ओर उपलब्ध अवसरों के बावजूद पर्याप्त जिम्मेदारी न लेने की प्रवृत्ति। धनंजय से जुड़े प्रसंग में यह संवाद आता है—"पाँच साल से यही सुन रहा हूँ! हर बार निकाल लेते हो!"[7]

यह प्रसंग आर्थिक निर्भरता और पारिवारिक दबाव को रेखांकित करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि युवा जीवन की समस्या को केवल 'महत्त्वाकांक्षा' के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है; आर्थिक आत्मनिर्भरता और उत्तरदायित्व भी उतने ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। संजय और धनंजय - दोनों ही, अपने-अपने ढंग से, उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं जो पारंपरिक पारिवारिक ढाँचे में पिता की भूमिका को नए सिरे से परिभाषित करने पर विवश करती है।

ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि धनंजय का संकट संजय के संकट से कहीं अधिक मौन और अदृश्य है। जहाँ संजय की महत्वाकांक्षा उसे दृश्य सफलता और सामाजिक प्रतिष्ठा की ओर ले जाती है, वहीं धनंजय की अकर्मण्यता उसे परिवार के भीतर ही एक अनकहे तनाव और शर्मिंदगी के केंद्र में डाल देती है। रघुनाथ के लिए यह स्थिति दोहरी चुनौती बन जाती है - एक ओर वे संजय को जाने देने की पीड़ा सहते हैं, दूसरी ओर धनंजय को सँभालने और आगे बढ़ाने का दबाव भी उन्हीं के कंधों पर आ टिकता है। इस अर्थ में उपन्यास यह भी दिखाता है कि आर्थिक उदारीकरण के दौर में अवसरों का विस्तार सभी युवाओं के लिए समान अर्थ नहीं रखता; कुछ के लिए वह द्वार खोलता है, तो कुछ के लिए वही अवसर एक अस्पष्ट, अनिर्णीत भविष्य में बदल जाता है।

परिवार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का द्वंद्व

पुरानी पीढ़ी के लिए परिवार पहला दायित्व है, जबकि नई पीढ़ी के लिए व्यक्तिगत निर्णय और स्वायत्तता अधिक महत्त्वपूर्ण होते जाते हैं। उपन्यास में यह अंतर किसी एक पक्ष को दोषी ठहराकर नहीं, बल्कि पिता और संतान के अलग-

अलग जीवन-मूल्यों के माध्यम से सामने आता है। रघुनाथ के लिए संतान की सफलता उनके जीवन के त्याग का परिणाम है; दूसरी ओर संतानें अपने समय, अवसरों और आकांक्षाओं के अनुसार जीवन चुनना चाहती हैं।

यही कारण है कि पिता का त्याग कभी-कभी संतान के लिए प्रेरणा के साथ-साथ एक नैतिक दबाव भी बन जाता है। उपन्यास का महत्त्व इस बात में है कि वह इस संबंध को सरल 'अच्छी संतान-बुरी संतान' के द्वंद्व में नहीं बदलता, बल्कि बदलते समय में परिवार की अवधारणा को जटिल बनाता है। गावकर (हस्ताक्षर) के शब्दों में यह उपन्यास बदलते परिवेश में पारिवारिक संबंधों की उसी जटिलता को बिना किसी सरलीकरण के दर्ज करता है।[8]

प्रेम, विवाह और बदलते युवा मूल्य

युवा जीवन का संकट केवल करियर और आर्थिक सफलता तक सीमित नहीं है। प्रेम और विवाह भी व्यक्तिगत चयन तथा पारिवारिक अपेक्षाओं के बीच संघर्ष का क्षेत्र बनते हैं। सरला के प्रसंग में प्रेम को निजी निर्णय के रूप में देखने की आकांक्षा दिखाई देती है, जो पारंपरिक पारिवारिक अपेक्षाओं से टकराती है। दूसरी ओर संजय के वैवाहिक जीवन में आया विघटन भी संबंधों के प्रति युवा पीढ़ी की बदलती दृष्टि को सामने लाता है। उपन्यास में प्रेम को लेकर कहा गया है— "प्यार बंद और सुरक्षित कमरे की चीज नहीं। खतरों से खेलने का नाम प्यार है।"[9]

यह कथन प्रेम को पारंपरिक सामाजिक नियंत्रण से अलग एक सक्रिय और जोखिमपूर्ण व्यक्तिगत अनुभव के रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार उपन्यास में युवा पीढ़ी के सामने भावनात्मक स्वतंत्रता और पारिवारिक-सामाजिक मर्यादाओं के बीच संतुलन का प्रश्न भी उपस्थित होता है - एक ऐसा प्रश्न जो केवल किसी एक पात्र तक सीमित न रहकर पूरी युवा पीढ़ी की सामान्य स्थिति बन जाता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि उपन्यास में प्रेम और विवाह को लेकर युवा पीढ़ी के भीतर भी कोई एक समान दृष्टिकोण नहीं है। जहाँ सरला के प्रसंग में प्रेम एक साहसिक, जोखिम उठाने वाला निर्णय बनकर आता है, वहीं संजय के वैवाहिक

जीवन में प्रेम धीरे-धीरे व्यावहारिकता और दूरी के बीच बिखरता हुआ दिखता है। यह विरोधाभास इस बात का प्रमाण है कि युवा जीवन की चुनौतियाँ किसी एक साँचे में नहीं ढलतीं - एक ही पीढ़ी के भीतर प्रेम और विवाह को लेकर कई परस्पर-विरोधी अनुभव और चयन एक साथ मौजूद रह सकते हैं। यही बहुस्वरता 'रेहन पर रग्घू' को युवा जीवन के सरलीकृत चित्रण से बचाती है।

जड़ों से दूरी और सांस्कृतिक विस्थापन

युवा जब महानगर या विदेश की ओर जाता है, तो उसके सामने केवल भौगोलिक दूरी का प्रश्न नहीं होता। अपनी भाषा, संस्कृति, परिवार और स्थानीय पहचान से संबंध भी बदलते हैं। संजय के प्रसंग में यह स्थिति विशेष रूप से स्पष्ट है। उसका कथन— "मैं तो डियर, परदेस को ही अपना देश बनाने की सोच रहा हूँ।"[10] - उस मानसिक बदलाव को व्यक्त करता है जिसमें जन्मस्थान से जुड़ी पहचान की जगह नए परिवेश में निर्मित पहचान अधिक महत्त्वपूर्ण होने लगती है।

यहाँ 'परदेस को अपना देश' बनाने की इच्छा केवल प्रवास की सूचना नहीं है; यह युवा की बदलती अस्मिता का संकेत भी है। इस प्रक्रिया में युवा न पूरी तरह अपनी पुरानी दुनिया में रहता है और न ही अपनी नई दुनिया में तुरंत पूरी तरह समाहित हो पाता है। यही बीच की स्थिति सांस्कृतिक और भावनात्मक विस्थापन को जन्म देती है। इसीलिए रघुनाथ के लिए संजय का विदेश जाना केवल बेटे का दूर जाना नहीं, बल्कि अपने ही परिवार के धीरे-धीरे अपने जीवन से बाहर चले जाने का अनुभव बन जाता है।

माता-पिता से दूरी और भावनात्मक अकेलापन

युवा संतानों की अपनी-अपनी जीवन-यात्राएँ अंततः रघुनाथ के अकेलेपन को गहरा करती हैं। तीन संतानों के पिता होने के बावजूद उनका अनुभव भावनात्मक संतानहीनता जैसा हो जाता है। वे कहते हैं— "मेरी औरत बाँझ है और मैं निःसंतान पिता हूँ!"[11]

यहाँ 'निःसंतान' शब्द जैविक अर्थ में नहीं, बल्कि भावनात्मक अर्थ में प्रयुक्त होता है। संतान मौजूद है, लेकिन वह पिता के साथ उस आत्मीयता में उपस्थित नहीं है जिसकी रघुनाथ अपेक्षा करते हैं। फताटे एवं प्रजापति (2024) ने भी काशीनाथ सिंह के कथा-साहित्य में वृद्धावस्था और अकेलेपन की इसी अभिव्यक्ति को एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में रेखांकित किया है।[12]

यहीं उपन्यास युवा जीवन की चुनौती को वृद्ध माता-पिता की चुनौती से भी जोड़ देता है। युवा की स्वतंत्रता और आकांक्षा जहाँ उसके लिए अवसर है, वहीं माता-पिता के लिए वही स्वतंत्रता कभी-कभी दूरी और अकेलेपन का कारण बनती है। यह द्वंद्व केवल रघुनाथ के व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं है; यह उस व्यापक सामाजिक परिवर्तन का संकेत है जिसमें संयुक्त परिवार की परंपरागत संरचना धीरे-धीरे बिखर रही है और वृद्ध माता-पिता अपने ही घरों में, संतानों की भौतिक अथवा भावनात्मक अनुपस्थिति में, एक नए प्रकार के एकाकीपन का सामना करने लगे हैं। इस दृष्टि से उपन्यास युवा जीवन की चुनौतियों को उसके परिणामों सहित - अर्थात उन चुनौतियों का असर आने वाली पीढ़ी पर भी - प्रस्तुत करता है।

'रेहन' का प्रतीक और युवा जीवन का मूल्य-संकट

उपन्यास का शीर्षक 'रेहन पर रग्घू' अपने भीतर गहरी प्रतीकात्मकता रखता है। रघुनाथ ने संतान के भविष्य के लिए अपने संसाधनों, अपनी सामर्थ्य और जीवन की शक्ति तक को दाँव पर लगा दिया। लेकिन समय बीतने के साथ वही संतानें अपने-अपने जीवन में दूर होती जाती हैं। इस अर्थ में 'रेहन' आर्थिक से अधिक भावनात्मक और संबंधात्मक स्थिति का प्रतीक बन जाता है।

अंतिम प्रसंग में रघुनाथ का अपहरणकर्ताओं के साथ चले जाना इस विडंबना को चरम तक पहुँचाता है। वहाँ वे उन युवकों को अपने बेटों के समान देखते हैं—"...जैसे वे बेटों के साथ मगन मन तीरथ पर जा रहे हों।"[13]

यह दृश्य बताता है कि पिता के लिए पुत्र-संबंध केवल रक्त का संबंध नहीं, बल्कि साथ, अपनत्व और उपस्थिति का भी संबंध है। जिस भावनात्मक उपस्थिति की उन्हें अपनी संतानों से अपेक्षा थी, उसका एक विचित्र प्रतिरूप उन्हें अपहरणकर्ताओं के साथ दिखाई देता है। इस प्रकार उपन्यास का अंत केवल

कथा-संयोग नहीं, बल्कि पूरे उपन्यास की केंद्रीय संवेदना का सघनतम रूपक बन जाता है।

निष्कर्ष

'रेहन पर रग्घू' उपन्यास स्पष्ट करता है कि 21वीं सदी के युवा जीवन की चुनौतियाँ किसी एक धरातल तक सीमित नहीं हैं। वे रोजगार और आर्थिक सफलता की चिंता से शुरू होकर परिवार के भीतर के अधिकार-संबंधों, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक दायित्व के बीच तनाव, भूमंडलीकरण से उपजी आकांक्षाओं, उपभोक्तावादी जीवन-दृष्टि, सांस्कृतिक जड़ों से दूरी, प्रेम-विवाह के बदलते मूल्य और अस्मिता के प्रश्न तक फैली हुई हैं।

संजय की विदेश-आकांक्षा, धनंजय की आर्थिक निर्भरता और रघुनाथ के प्रति संतानों की बदलती दूरी युवा जीवन के अलग-अलग रूपों को सामने लाती है। इसीलिए उपन्यास को केवल पारिवारिक कथा मानना पर्याप्त नहीं होगा। यह उस सामाजिक संक्रमण को भी दर्ज करता है जिसमें युवा परंपरा और आधुनिकता, स्थानीयता और वैश्विकता, परिवार और व्यक्तिवाद तथा आकांक्षा और दायित्व के बीच अपना रास्ता तलाश रहा है।

रघुनाथ का 'रेहन' होना इस पूरे संक्रमण की सबसे मार्मिक छवि है। उन्होंने संतान के भविष्य के लिए स्वयं को समर्पित किया, लेकिन अंततः उनके सामने यह प्रश्न रह जाता है कि क्या आर्थिक और सामाजिक उन्नति संबंधों की आत्मीयता की भरपाई कर सकती है। इस प्रश्न का कोई सरल उत्तर उपन्यास नहीं देता; बल्कि वह पाठक को उस जटिल मानवीय स्थिति के सामने खड़ा करता है जहाँ युवा की स्वतंत्रता और माता-पिता की अपेक्षा दोनों अपनी-अपनी जगह वास्तविक हैं। यही जटिलता 'रेहन पर रग्घू' को 21वीं सदी के युवा जीवन पर लिखे गए हिंदी उपन्यासों में एक विशिष्ट और प्रामाणिक स्थान देती है।

अंततः यह उपन्यास हमें यह भी स्मरण कराता है कि युवा जीवन की चुनौतियाँ कभी भी युवा तक सीमित नहीं रहतीं - वे परिवार की संपूर्ण संरचना, वृद्ध माता-

पिता की मनःस्थिति और समाज के मूल्य-बोध तक फैलती चली जाती हैं। संजय, सोनल, धनंजय और सरला जैसे पात्र अपने-अपने ढंग से भूमंडलीकृत भारत के उस युवा-मानस का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अवसर और असुरक्षा, महत्वाकांक्षा और अपराध-बोध, स्वतंत्रता और अपनेपन के बीच निरंतर आवाजाही करता रहता है। काशीनाथ सिंह इस आवाजाही को न तो आदर्शीकृत करते हैं और न ही उसकी निंदा करते हैं; वे केवल उसे उतनी ही ईमानदारी से दर्ज करते हैं जितनी ईमानदारी से रघुनाथ अपने बेटों को 'ऊपर जाने' देते हैं। यही आलोचनात्मक तटस्थता उपन्यास को समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में युवा जीवन के प्रामाणिक दस्तावेज़ के रूप में प्रतिष्ठित करती है, और आने वाले शोधार्थियों के लिए भी यह पाठ भूमंडलीकरण, पीढ़ीगत द्वंद्व तथा पारिवारिक संबंधों के अंतर्संबंधों को समझने का एक उर्वर आधार बना रहेगा।

संदर्भ-सूची:-

[1] चौधरी, राजेश. (2014). 'रेहन पर रग्घू' और भूमंडलीकरण का प्रश्न। *अपनी माटी* (ऑनलाइन शोध पत्रिका)।

[2] अमोल अंबावत जीवणसिंहपुरा. (2023). भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद का जीवंत दस्तावेज 'रेहन पर रग्घू'। *Research Review International Journal of Multidisciplinary*, 8(7).

[3] सिंह, काशीनाथ. (2008). *रेहन पर रग्घू*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ सं- 58.

[4] सिंह, काशीनाथ. (2008). *रेहन पर रग्घू*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ सं- 87

[5] सिंह, काशीनाथ. (2008). *रेहन पर रग्घू*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ सं- 93

[6] अमोल अंबावत जीवणसिंहपुरा. (2023). भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद का जीवंत दस्तावेज 'रेहन पर रग्घू'। *Research Review International Journal of Multidisciplinary*, 8(7).

[7] सिंह, काशीनाथ. (2008). *रेहन पर रग्घू*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ सं- 112

[8] गावकर, प्रज्योत पांडुरंग. (n.d.). 'रेहन पर रग्घू' और बदलता परिवेश। *हस्ताक्षर* (ऑनलाइन शोध पत्रिका)।

[9] सिंह, काशीनाथ. (2008). *रेहन पर रग्घू*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ सं- 57

[10] सिंह, काशीनाथ. (2008). *रेहन पर रग्घू*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ सं- 48

[11] सिंह, काशीनाथ. (2008). *रेहन पर रग्घू*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ सं- 156

[12] फताटे, पल्लवी, एवं प्रजापति, अमरनाथ. (2024). काशीनाथ सिंह के कथा साहित्य में वृद्धावस्था की अभिव्यक्ति। *अपनी माटी* (ऑनलाइन शोध पत्रिका)।

[13] सिंह, काशीनाथ. (2008). *रेहन पर रग्घू*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ सं- 167